भारतीय व्यवस्था : स्वयं पुनर्निर्माण की सम्भावनाएं

□ पी० सी० माथुर

ऊर्जा व पदार्थों के विभिन्न अनुपातों में सम्मिश्रण से उत्पन्न होनेवाली प्राकृतिक व्यवस्थाओं के स्वतः ही पुनर्निर्माण के सिद्धान्त से परिचित विचारकों के लिए यह सोचना स्वभाविक है कि क्या मानवीकृत व्यवस्थाओं का भी स्वतः पुनर्निर्माण होने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है ? सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्थाओं के निरन्तर स्वतः पुनर्निर्माण के सिद्धान्त पर आधारित कई विश्व-दर्शन समय-समय पर प्रतिस्थापित किये जा चुके हैं। विशेषतौर पर परिवर्तन के चक्रिय सिद्धान्त पर विश्वास करनेवाले विचारकों (जिनमें अरस्तू व प्लेटो का नाम मुख्य रूप से ले सकते हैं) के चिन्तन में व्यवस्थाओं के स्वतः पुनर्निर्माण की अवधारणा एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। परन्तु यदि हम निर्जीव प्राकृतिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में स्वतः पुनर्निर्माण की सम्भावनाओं को स्वीकार करके मानवीकृत व्यवस्थाओं में भी स्वयं पुनर्निर्माण की सम्भावनाओं का पता लगाने के प्रयासों को वैध मानते हैं तो हमें मानव-रचित व्यवस्थाओं के स्वयं पुनर्निर्माण की क्षमता से युक्त होने की सम्भावनाओं को ध्यान में रखना चाहिए। प्राकृतिक व्यवस्थाओं को ही देखा जाये तो कई सजीव व्यवस्थाओं में आंशिक रूप से स्वयं पुनर्निमाण की क्षमता पाई जाती है। इसलिए मानव-निर्मित व मानव-संचालित व्यवस्थाओं में स्वयं पुनर्निर्माण की क्षमता का पाया जाना कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हां, यह बात अलग है कि हम मानव-संचालित व्यवस्थाओं को मानवकृत ही नहीं मानें बल्कि उनका उद्गम कोई परामानवीय स्त्रोत समझते हों।

मानव-केन्द्रित व्यवस्थाओं में स्वयं पुनर्निर्माण की सम्भावनाएं मानव प्रकृति में ही निहित हैं। चाहे कोई

व्यक्ति परिवर्तन के दूरगामी प्रभाव के बारे में निश्चित अनुमान लगा सके अथवा नहीं, वह यह अवश्य चाहता है कि जिस प्रकार की व्यवस्था का उसे सुखद अनुभव है वह व्यवस्था या तो वैसी ही बनी रहे। यदि उसमें कोई पतन हो रहा हो तो उस पतन की मात्रा को कम किया जावे, और हो सके तो पतन की प्रक्रिया को रोक कर व्यवस्था का पुनरुत्थान किया जाय। मनुष्य की इसी प्रवृत्ति के आधार पर अधिकतर परम्पराओं का जन्म होता है, जिनका मुख्य उद्देश्य किसी भी व्यवस्था को एक पूर्व-निश्चित स्वरूप में एक लम्बे समय तक बनाये रखना होता है। इस प्रकार की परम्पराओं में यथा-स्थिति को बनाये रखने की क्षमता होती है तथा इन परम्पराओं को सूजक संदर्भित व्यवस्थाओं के पतन तथा उस पतन के व्यवस्था द्वारा स्वयं संशोधन की सम्भावनाओं की व्याख्या करने में समय व्यतीत नहीं करते हैं। वस्तुतः पिछले वाक्य में आया हुआ 'है' के स्थान पर हमें 'थे' पढ़ना ज्यादा उचित होगा। क्योंकि पिछली कुछ शताब्दियों से मानव जीवन में कुछ ऐसी परिवर्तन श्रृंखलायें चल पड़ी हैं जिनमें परम्पराप्रधान व्यवस्थाओं का (विशेषतौर पर उन प्रधान व्यवस्थाओं का, जिनकी आधारभूत परम्पराओं में स्वयं पुर्नानिर्माण की क्षमता नहीं है) दीर्घकालिक रूप से अपरिवर्तनीय संचालक सम्भव-सा हो गया है। चाहे कुछ भी कारण हो, आज विश्व की सभी व्यवस्थाओं में परिवर्तन की गति तीव्रतर और वेगशील होती जा रही है, तथा परिवर्तन के इस प्रवाह में वे ही व्यवस्थाएं लम्बे समय तक जीवित रह सकती हैं जिनमें स्वयं पुर्नानिर्माण की अन्त गर्भित क्षमता विद्यमान हो।

२०वीं शताब्दी के उतरार्ध में कोई भी व्यवस्था केवल परम्परा के आधार पर दीर्घकालिक नहीं हो सकती है। जैसा कि मानव के इतिहास के आदिकाल में एक साधारण सी बात थी। प्राचीन परम्राओं में स्वयं संशोधन की क्षमता होना या न होना कोई विशेष महत्व नहीं रखता था। किन्तु पिछली कुछ शताब्दियों में हुए परिवर्तनों के बाद अब यह सम्भव नहीं रहा है कि कोई व्यवस्था अपने मूलरूप में लम्बे समय तक स्वयं संशोधन अथवा स्वयं पुर्नानिर्माण किये बिना कार्य सम्पादन कर सके। अतएव, आज आवश्यकता परम्पराओं को त्यागने की ही नहीं है बल्कि ऐसी परम्पराओं का पुनःनिर्माण करने की है जिनमें स्वयं पुर्नानिर्माण करने की क्षमता हो।

: २ :

भारतीय व्यवस्था का इतिहास एक लम्बी गौरवशाली गाथा है। प्राचीन भारत के गौरव की परम्पराओं ने भारतीय व्यवस्था के प्रत्येक अंग को एक अपरिवर्तनशील रूप में ढाल दिया था। अंग्रेजों के भारत में आधिपत्य होने के बाद जो पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसमें बहुत-सी प्राचीन परम्पराओं का लोप हो गया। कुछ परिवर्तित रूप में हमारे सामने आईं तथा कुछ का मूल रूप विकृत होकर उनका प्रभाव पहले से कहीं ज्यादा परिवर्धित हो गया। इस बहुस्तरीय परिवर्तन प्रक्रिया का मूल स्त्रोत विदेशी था। तथा आरम्भ में पाश्चात्य मूल्यों का अंधानुकरण करने की प्रकृति रही। इस सर्वमान्य सत्य को लेकर आज भी कई विचारधारायें भारत में प्रचलित हैं जो पिछले कुछ दशाब्दियों में हुए परिवर्तनों की वैद्यता में उपयोगिता को स्वीकार नहीं करते तथा प्राचीन भारतीय व्यवस्था को अर्वाचीन भारत में पुर्नस्थापित करना चाहते हैं। यदि परिवर्तन का प्रवाह केवल पाश्चात्यकरण पर ही रुक गया होता, तो शायद यह भी सम्भव होता कि भारतीय व्यवस्था से विदेशी तत्वों को निकाल दिया जाये परन्तु भारत के अंग्रेजी शासकों ने भारतीय व्यवस्था को केवल पाश्चात्य परम्पराओं से ही अवगत नहीं कराया बल्कि उसमें आधुनिकरण की परिवर्तन श्रृंखला को अन्तरनिहित कर दिया।

भारत के स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरान्त भारतीय-व्यवस्था के आधुनिकरण की प्रक्रिया को भारतीय राजनीतिज्ञों ने नेतृत्व प्रदान किया। विश्व के बहुत ही कम ऐसे देश होंगे जहां पर कि समाज के प्रत्येक अंग पर राजनीति का इतना प्रभाव हो जितना कि भारत में। ऐसा लगता है कि हजारों साल से धर्म-प्रधान देश कुछ ही वर्षों में राजनीति-प्रधान देश बन गया है।

राजनीति भारतीय व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। भारत की परम्परागत संस्कृति में राजनीति का अस्तित्व तो रहा है परन्तु राजनीति का क्षेत्र परम्परागत रूप से सीमित रखा गया और अधिकांश जनता को राजनीति में क्रियात्मक सहभागिता से भी वंचित रखा गया। इसीलिए भारतीय इतिहास में राजनीति व्यवस्था संशोधन तथा व्यवस्था पुनःनिर्माण में कोई विशेष योगदान नहीं दे पाई। जन-

साधारण की दृष्टि में राजनीति एक विनाशकारी अथवा सुखदायी प्रक्रिया बन कर ही रह गई। आधुनिक भारत की राजनीति वयस्क मताधिकार पर आधरित होने के कारण उसका प्रभाव-क्षेत्र सम्पूर्ण समाज है। देश के प्रत्येक नागरिक को आज विभिन्न प्रकार की समस्याओं का जनतान्त्रिक रूप से समाधान करने का अधिकार है। समाज के राजनीतिकरण से तथा राजनीति के आधुनिकरण से भारतीय व्यवस्था में एक नया परिवर्तन स्वतः स्वतः स्थापित हो गया है। जिसके स्वयं संशोधन की क्षमताओं का अभी शायद भारतवासियों ने लाभ उठाना भी शुरू नहीं किया है।

: ३ :

पिछले तीन दशकों में भारतीय व्यवस्था को विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। भारत के तीन दशकों के इतिहास का एक मुख्य लक्षण भी इन चुनौतियों का राजनीति स्वरूप रहा तथा इनका समाधान भी राजनैतिक स्तर पर ही किया गया। अपवाद स्वरूप कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़ दिया जाये तो भारतीय जनमानस पर राजनैतिक नेता ही छाये रहे, चाहे वो सरकारी गद्दी पर बैठे हों या बाहर। राजनीतिज्ञों की इस लोकप्रियता का मुख्य कारण भारतीय नागरिकों के द्वारा अपने मताधिकार के प्रयोग के द्वारा प्राप्त अनुभूति के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। शुरू में तो यह समझा जाता था कि भारतीय मतदाता भेडचाल के सिद्धान्त के अनुसार अपने मताधिकार का प्रयोग करता है, परन्तु छठे या सातवें लोकसभा चुनावों में भारतीय मतदाताओं ने अपनी राजनीतिज्ञता का परिचय देकर इस भ्रान्ति को मिटा दिया है। इसके अलावा भी अनेकों स्तरों पर अनेकों बार भारतीय मतदाताओं ने अपने विवेकशील चयन द्वारा महत्त्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन किये हैं।

: ४ :

व्यवस्थाओं में परिवर्तन वातावरण में उत्पन्न परिवर्तनकारी बदलावों के उत्पादन से होता है। किसी भी व्यवस्था की निरन्तरता उसकी इन वातावरणीय परिवर्तनों की ग्रहणशीलता पर निर्भर करती है। अन्य व्यवस्थाओं की तुलना में राजनीति-प्रधान व्यवस्थाओं में वातावरणजनित परिवर्तनों से अन्तर व्यापार करने की क्षमता अधिक होती है। राजनीति एक साधन है, कोई आदर्श अथवा चिरन्तन मूल्य नहीं। मैक्यावली व कौटिल्य के अनुसार राजनीति एक हित स्पर्धा का साधन है तथा यदि इस मान्यता को स्वीकार लिया जाये तो यह बात स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है कि राजनीति अस्थाईत्व को स्थायी रुप प्रदान करती है। जैसे-जैसे हित बदलते जाते हैं वैसे ही अस्थायी रूप पर नये-नये हितों के सामंजस्य रूप का निर्माण होता है। यद्यपि कोई भी निश्चित हित सामंजस्य दीर्घकालिक रूप से स्थायी नहीं रहता है, परन्तु नये हित सामंजस्यों की (राजनैतिक) प्रक्रिया बिना किसी रूकावट के चलती रहती है। भारत जैसे देश में जहाँ परिवर्तन की गति अतिवेगशील हो चुकी है, हित स्पर्धा समाज में व्यापक रूप ग्रहण करती जा रही है। समाज में इस राजनीतिकरण की प्रक्रिया को मूल्यों के द्वारा का द्योतक मान लेना एक स्वाभाविक-सी बात है, क्योंकि हमारे देश की परम्पराओं में साधन प्रधान मूल्यों का विशेष महत्व नहीं रहा है। राजनीति एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम कई प्रकार के साध्य मूल्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस मूल्य-बहुल्यता व मूल्य-विविधता की परिस्थिति में नये हितों का निर्माण व उनका संघर्ष जहां स्वाभाविक है, वहां यह देश की प्राचीन स्थायित्व की परम्पराओं से मौलिक रूप से भिन्न है। आज के भारत में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनकारी प्रवाह तीव्र गति धारण कर चुके हैं, जिन्हें न तो रोका जा सकता है और न मोड़ा जा सकता है, और न ही बहुत देर तक बांध कर रखा जा सकता है। इस प्रवाह में राजनीति ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा नये सर्वमान्य मूल्यों का निर्माण किया जा सकता है। वस्तुतः यदि हम किन्हीं विशेष प्रचीन मूल्यों का पुर्नस्थापन करना चाहें तो भी आज की परिस्थितियों में यह केवल राजनीतिक साधनों द्वारा ही सम्भव है।

साध्य की अपेक्षा साधन को अधिक महत्व देना शायद विश्व की किसी भी प्राचीन परम्परा में विश्वास रखने वाले विचारक को स्वीकार्य नहीं होगा। परन्तु यदि मूल्य विविधता के आधुनिक मूल्य को हमें जीवित रखना है तो मूल्य प्राप्ति के साधन की पवित्रता को भी, जनतांत्रिक रूप देना पड़ेगा। भारत ने इस दिशा में पिछली दो शताब्दियों में काफ़ी उल्लेखनीय प्रगति की है तथा पिछले तैंतीस वर्षों में तो राजनैतिक साधनों का उपयोग एक नई

परम्परा-सा बन गया है। हितों की विविधता में मूल्यों के संघर्ष से क्षुब्ध होकर हमें राजनीतिकरण की इस प्रक्रिया को रोकने का कोई प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि अन्य साधनों की तुलना में राजनीति ही एक ऐसा साधन है जिसका उपयोग प्रत्येक नागरिक सुविधापूर्वक कर सकता है। हित सामंजस्य स्थापित करने की कठिनाईयों को देखते हुए कुछ विचारक यह चाहते हैं कि हित अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को ही नियंत्रित कर दिया जावे। परन्तु जब तक सर्वमान्य मूल्यों का निर्माण नहीं हो जाता, इस प्रकार से वी-राजनीतिकरण करने के प्रयासों को सफलता की सम्भावनायें बहुत कम हैं।

: ५ :

आधुनिकता कोई साध्य मूल्य नहीं है। आधुनिकता तो परिवर्तनशील वातावरण में स्थायित्व शोले व्यवस्थाओं की निर्माण शैली है। परिवर्तनों में स्थायित्व व निरन्तर अन्तर-व्यापार चलते रहना एक प्राकृतिक नियम है जो कि मानव समाज के विभिन्न अंगों पर किसी-न-किसी अंश में अवश्य प्रभावी होता है। मानव सदैव यह प्रयास करता है कि ऐसी व्यवस्थाओं का निर्माण हो जिनमें स्थायित्व अधिकतम व परिवर्तन न्यूनतम हो। किन्हीं विशेष कारणों से भारत के प्राचीन विचारक कुछ ऐसी परम्पराओं का निर्माण करने में सफल भी हो गए थे जिनकी निर्माण शैली के स्वरूप के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की भारतवासियों में कोई अभिरुचि नहीं रह गई थी। आज जब वो परम्परायें परिवर्तन के प्रवाहों को रोकने की क्षमता नहीं रह गई हैं तो हमें व्यवस्थाओं की नई निर्माण शैलियों का निर्माण करना आवश्यक हो गया है। संयोगवश योरोप के कई उन देशों में जिन्होंने समुद्रपारीय साम्राज्य स्थापित किये भारत पर एक ऐसे देश का आधिपत्य हुआ जिसकी व्यवस्था में, परिवर्तन में स्थायीत्व का बहुत ही सुव्यवस्थित सामंजस्य पिछली कई शताब्दियों से देखने को मिल रहा है। भारत के स्वाधीनता संग्राम के अग्रदूतों में पाश्चात्य जगत के इस आधुनिकरण के मूलमंत्र आधार पर भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था का निर्माण किया जिसकी कि निर्माण शैली राजनीतिकरण व राजनैतिक परिवर्तन पर आधारित है। जब तक देश में आधुनिकरण की यह साधन व्यवस्था विद्यमान है तब तक भारतीय व्यवस्था के स्वयं पुर्ननिर्माण की सम्भावनायें बहुत प्रबल हैं। □